बाबाजी की अध्यात्म-सुधा

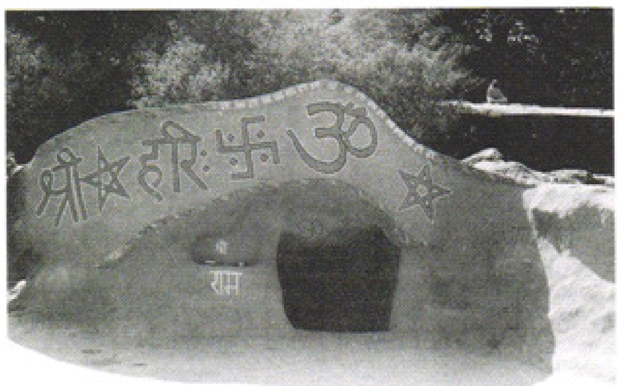

॥ परम पूज्य श्री मस्तराम बाबाजी की गुफा ॥

संशोधित संस्करण

२०२२

प्रकाशक :
डा० कांशीराम
डी-११, तीसरा तल,
जी० टी० करनाल रोड,
महेन्द्र एन्क्लेव, दिल्ली - ११००३३.

© प्रकाशक

मुद्रक :
श्री जैनेद्र प्रेस, ए-४५, फेज़-१,
नारायणा, नई दिल्ली-११००२८.

निवेदन

बाबाजी की पच्चीसवीं पुण्यतिथि पर उनके द्वारा निबद्ध रचनाओं में से कुछ रचनाओं के हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन का गत वर्ष सुझाव आया। इस प्रस्ताव के क्रियान्वयन की प्रक्रिया मैंने गीतागुह्य के हिन्दी अनुवाद से शुरु की । आत्मचिन्तनम् का अनुवाद तो नानीजी ने इंग्लिश में बाबाजी के सामने ही कर दिया था और उसी को आधार बना कर मैंने उसका हिन्दी में अनुवाद करके बाबाजी को दिखा दिया था । उसके बाद पैम्फलेट के रूप में गोविमर्शन का अनुवाद भी बाबाजी के सामने प्रस्तुत कर दिया था । प्रस्ताव के क्रियान्वयन की प्रक्रिया में अन्य रचनाओं का भी हिन्दी में अनुवाद करने के लिए मन में प्रेरणा उद्भूत हुई । फलस्वरूप बदरीशस्तवन, विरक्तगीत, गङ्गावर्णन, परमपुरुष की अद्भुत प्रार्थना तथा जय जय सकलसर्गमय का अनुवाद भी हिन्दी में कर दिया ताकि आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत बाबाजी की कृतियाँ भक्तजनों के आध्यात्मिक मार्ग को प्रशस्त करने में सहायक हों । पाठभेदों का निर्णय तथा स्पष्ट रूप से प्रतीयमान अशुद्धियों का शोधन नानीजी तथा महेन्द्र थापरजी से विचार विमर्श करके तथा पाणिनि व्याकरण को ध्यान में रख कर दिया गया । बाबाजी की अभिव्यक्ति की भावना अक्षुण्ण बनीं रहे इसमें नानीजी, स्वामी राधारमणजी तथा महेन्द्र थापरजी का योगदान प्रशंसनीय है। संस्कृत रचनाओं के हिन्दी अनुवाद के अतिरिक्त बाबाजी की हृदयस्पर्शी तथा मुमुक्षुओं को आगे बढ़ाने वाली हिन्दी की कुछ रचनाएँ भी यहाँ संकलित की जा रहीं हैं। त्रुटियाँ करना मानव का स्वभाव है । अत: उनके लिए क्षमा की प्रार्थना करते हुए सानुरोध आग्रह है कि भक्तजन त्रुटियों की ओर ध्यान दिलायें ताकि भविष्य में उनका सुधार किया जा सके । इस भावना के साथ यह लघु पुस्तिका आप के समक्ष प्रस्तुत है ।

यह २०१२ के प्रकाशन का संशोधित संस्करण है।

श्रद्धावनत

कांशी राम

विषय-सूची

		पृ०सं०
१.	श्रीगीतागुह्यम्	१
२.	आत्मचिन्तनम्	५
३.	बदरीशस्तवनम्	२१
४.	गोविमर्शनम्	२६
५.	विरक्तगीतम्	३०
६.	हिमाचलचित्रेषु गङ्गावर्णनम्	३२
७.	परमपुरुष की प्रार्थना	३४
८.	जय जय सकलसर्गमय	३५
९.	हरिजी मोहि शरण रख लीजे	३६
१०.	ते जन मेरे प्राण पिरीते	३७
११.	अतिसय प्रिय ते भगत हमारे	३७
१२.	अहे मन भावन रूप तिहारो	३८
१३.	श्रीराधाजी का जन्मोत्सव	३९

ॐ श्रीगणेशाय नमः

॥ अथ श्रीगीतागुह्यम् ॥

प्रज्ञावादान् निराकृत्य गीतागुह्यं प्रगृह्यताम् ।
नैव नाशो निवासो वा कस्यचिदिति निश्चितम् ॥१॥

अनुवाद – विद्वत्ता की बातें छोड़ कर गीता के सार को अच्छी तरह ग्रहण करो। यह निश्चित है कि किसी का नाश नहीं होता अर्थात् आत्मा का नाश नहीं होता तथा शरीर का निवास अर्थात् उसका हमेशा बना रहना सम्भव नहीं है । अभिप्राय यह है कि बुद्धि विलास छोड़ कर गीता के सार को समझ कर इस नाशवान् शरीर तथा मन को आत्मतत्त्व के अनुसन्धान में लगा देना चाहिए ॥१॥

म्रियमाणं हि को रक्षेत् कोऽवध्यं हन्तुमर्हति ।
असदसद्धि सत्सच्च जन्ममृत्युर्न तत्त्वतः ॥२॥

अनुवाद – मरते हुए की अर्थात् नाशवान् शरीर की कौन रक्षा कर सकता है? अवध्य अर्थात् अनश्वर आत्मा को कौन मार सकता है? अभिप्राय यह है कि शरीर को कोई बचा नहीं सकता और न ही कोई नित्य आत्मा का नाश कर सकता है । असत् असत् ही रहता है और सत् सत् ही । आत्मा सत् है, वह असत् नहीं हो सकता अर्थात् उसका अभाव नहीं हो सकता और जगत् कभी सत् नहीं हो सकता अर्थात् तीनों कालों में उसकी सत्ता नहीं होती । जन्म तथा मृत्यु वास्तव में नहीं होतीं क्योंकि सनातन तत्त्व तो एक ही है ॥२॥

कर्तव्यश्चेद्धि कर्तव्यः संग्रामः स्वजनैरपि ।
निष्पक्षो निर्ममो भूत्वा न्यायाधीशासनस्थवत् ॥३॥

अनुवाद – कर्तव्य तो करना ही चाहिए । यदि अपने सम्बन्धियों से संग्राम करना कर्तव्य पक्ष में आता है तो अपने लोगों से भी संग्राम करने में हिचकना नहीं चाहिए । निष्पक्ष तथा ममतारहित होकर न्यायाधीश की तरह व्यवहार करना चाहिए ॥३॥

कौशलेन क्रिया कार्या यज्ञभावान्मुमुक्षुणा ।
मायाचक्रं विवर्तेत मायाऽक्रियं वियोजयेत् ।।४।।

अनुवाद – मोक्ष के इच्छुक व्यक्ति को यज्ञ की भावना से युक्त होकर कुशलतापूर्वक अर्थात् समत्वबुद्धि से युक्त होकर कर्म करना चाहिए । मायाचक्र घूमता रहता है अर्थात् अकर्म में आसक्त मनुष्य को माया कर्म में लगा देती है । नैष्कर्म्य में प्रतिष्ठित व्यक्ति को माया अपने से पृथक् कर देती है अर्थात् मुक्त कर देती है ।।४।।

योगो ज्ञानेन स्याद्युक्तो ज्ञानं योगेन संविशेत् ।
भूर्भुवोवच्च सर्वत्र प्रश्नात् तयोर्व्यवस्थितिः ।।५।।

अनुवाद – कर्मयोग ज्ञान से युक्त होना चाहिए अर्थात् व्यक्ति को समझ तथा विवेक के साथ कर्म सम्पन्न करने चाहिए । विवेक से शास्त्रोक्त कर्म करने पर मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध होता है और वह ज्ञान का अधिकारी बन जाता है । इस प्रकार वह योग से ज्ञान में प्रवेश करता है । योग तथा ज्ञान की स्थिति सर्वत्र पृथिवी तथा अन्तरिक्ष की तरह होती है अर्थात् जिस प्रकार अन्तरिक्ष पृथिवी पर टिका होता है, उसी प्रकार ज्ञान भी सामान्यतया विवेक से किए गए शास्त्रोक्त कर्मों पर आश्रित होता है । यह प्रश्न से व्यवस्थित होता है कि कोई व्यक्ति कर्म द्वारा परम्परा से मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी है अथवा सीधा ज्ञान से । आप्तपुरुष से इस विषय में जब मुमुक्षु प्रश्न करता है तब वे इस की व्यवस्था करते हैं कि वह कर्ममार्ग के द्वारा अपने लक्ष्य को सिद्ध करे अथवा सीधे ज्ञान मार्ग से चल कर ।।५।।

संस्मरन् सर्वसारं तं तदर्थं कर्म कल्पयन् ।
तदादर्शस्त्वमेवासि तस्य भावः स एव हि ।।६।।

अनुवाद – सकल पदार्थों के सारभूत परमेश्वर का स्मरण करते हुए उसके लिए कर्म करने चाहिए । तुम उसके सदृश ही हो अर्थात् तुम ही परमात्मा के प्रतिबिम्ब हो । (माया की दृष्टि से) तुम उससे उद्भूत हुए हो । तुम वही हो ।।६।।

पतितपावनः श्रीशः प्रीतः पत्रेऽपि पितृवत् ।
धर्म्यामृतेन संसेव्यः सगुणो निर्गुणोऽपि सः ।।७।।

अनुवाद – लक्ष्मीपति पतितपावन हैं । पिता के सदृश वे पत्ते से भी सन्तुष्ट हो जाते हैं । गीता के बारहवें अध्याय में निर्दिष्ट साधनों से तथा प्रणव के द्वारा उनकी उपासना करनी चाहिए । वे निर्गुण होते हुए भी सगुण हैं ।।७।।

शरीरं क्षेत्रमित्याहुर्ज्ञानं सत्त्वव्यवस्थितिः[१] ।
मूलं ज्ञेयं परं ब्रह्म जन्माद्यस्य यतोऽन्वयात् ।।८।।

अनुवाद – शरीर को क्षेत्र कहते हैं। अर्थात् जैसे पशु पक्षी से खेत की रक्षा करते हैं वैसे ही शरीर की षड् रिपुओं से रक्षा करनी होती है । सत्त्व गुण में सम्यक् रूप से स्थित रहना 'ज्ञान' है। (श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के १३ वें अध्याय के ७ वें से लेकर ११ वें श्लोक के पूर्वार्ध तक ज्ञान के साधनों का प्रतिपादन किया गया है। इन्हीं साधनों को ११ वें श्लोक के उत्तरार्ध में औपचारिक रूप से ज्ञान शब्द से कहा गया है तथा उससे अन्य को अज्ञान।) संसार का मूल परब्रह्म जानने योग्य है (वेदान्त के प्रमेय अर्थात् ज्ञेय को भगवान् १२ वें ही श्लोक में बतलाते हैं)। जगत् में अनुगत होने के कारण चैतन्य अर्थात् ब्रह्म ही सबका मूल कारण है जिससे जगत् की उत्पत्ति होती है और जिसमें उसकी स्थिति और लय होते हैं। (इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान तथा ज्ञेय इन तीनों को भगवद्‌गीता के १३ वें अध्याय के सार रूप में बाबाजी ने इस श्लोक में कह दिया है। इस प्रसंग में गीता के १३ वें अध्याय का १८ वाँ श्लोक भी अवधेय है।)।।८।।

१. सत्, ज्ञान तथा ब्रह्म पर्याय हैं । सत्त्व अर्थात् सत्ता में व्यवस्थिति (सत्ता के साथ तादात्म्य होना) ही ज्ञान (क्षेत्रज्ञ) है। ऐसा अर्थ भी संभव है ।

गुणार्हमम्बरं येन व्यावृतं वै तदमृतम् ।
यद् बुद्‌ध्वा विरसं सर्वं येन स्यान्मधुरं मधु ।।९।।

अनुवाद – (तीन सत्त्व, रजस् तथा तमस्) गुणों से निर्मित वस्त्ररूपी माया से वह अमृतस्वरूप ब्रह्म विशेषरूप से ढ़का हुआ है । जिसका ज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर अन्य सब कुछ नीरस हो जाता है । जिससे मधु भी मधुर हो जाता है ।।९।।

तपस्त्यागादिभिर्लिङ्गैर्मुक्तिमार्गः प्रतीयते ।
दम्भदर्पादिभिर्लिङ्गैर्बन्धमार्गो न गम्यते ।।१०।।

अनुवाद – तपस्या आदि चिह्नों से मुक्तिमार्ग अनुभव में आने लगता है । तप आदि करने वाला व्यक्ति मुक्ति मार्ग का पथिक है । दम्भ दर्प आदि चिह्नों से बन्धमार्ग (संसार) चलने योग्य नहीं है अर्थात् इस अनर्थपूर्ण संसार को पार नहीं किया जा सकता ।।१०।।

इत्थं हि साधु वर्तेथा यथा त्वां तु स्मरेद्धरिः ।
परित्यज्य प्रवृत्तिं वा सर्वदैकं हरिं स्मर ।।११।।

अनुवाद – इस प्रकार सद्व्यवहार करो कि परमेश्वर तुम को याद करे अर्थात् परमेश्वर को आप अच्छे लगो या प्रवृत्ति को छोड़ कर सदा ही हरि का स्मरण करो ।।११।।

हरिः ॐ तत्सत् ।
श्रीमद्भगवद्गीतापारिजातपुष्पवाटिकायाः सारमुद्धृत्य कृतं श्रीकृष्णार्पणमिदं मधु ।।

श्रीमद्भगवद्गीता रूपी पारिजात के पुष्पों की वाटिका से सार निकाल कर श्रीकृष्ण को यह मधु समर्पित किया।

आत्मचिन्तनम्

भूमिका

मोहमाया के संसार में जीवनयापन करते हुए परमवाञ्छनीय आत्मसाक्षात्कार के लिए आत्मविषयक चिन्तन करना अत्यन्त कठिन काम है। जैसे सम्यक् प्रकाश के अभाव में रज्जु में सर्प की प्रतीति हो जाती है और भयादि उत्पन्न हो जाते हैं वैसे ही अज्ञान काल में ब्रह्म में जगत् प्रतीत होता है और मोहममतादि उत्पन्न हो जाते हैं तथा जैसे प्रकाश की सत्ता होने पर रज्जु का वास्तविक स्वरूप प्रकट हो जाता है और सर्प की सत्ता का नाश हो जाता है, तथा परिणामतः भयादि नष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार ज्ञान से अज्ञान के दूर हो जाने पर आत्मा का साक्षात्कार (अपरोक्षानुभव) होता है और फलतः संशय, मोह, भय आदि नष्ट हो जाते हैं। यह आत्मस्वरूपज्ञान (आत्मा का अपरोक्ष अनुभव) अनवच्छिन्न तथा तीव्र आत्मविषयक चिन्तन के बिना संभव नहीं है। 'आत्मविषयक' का अर्थ है 'आत्मा है विषय या आलम्बन जिसका' ऐसा ध्यान या अनुसन्धान। ऐसा ध्यान-चिन्तन ईश्वररूप सद्गुरु की कृपा के बिना सम्भव नहीं है। सद्गुरु से अनुग्रहरूप में प्राप्त यह 'आत्मचिन्तनम्' मुमुक्षुओं के लिए आत्मा के दुर्लभ अपरोक्ष अनुभव करने का सरल सोपान है।

'आत्मचिन्तनम्' में इक्कीस श्लोक हैं। प्रथम श्लोक में परम तत्त्व के निर्गुण तथा सगुण रूपों की वन्दना की गयी है। यह तथ्य परमात्मा के दोनों रूपों की उपासना के महत्त्व का परिचायक है। प्रथम श्लोक दूसरे श्लोक के साथ मिलकर 'आत्मचिन्तन' की विषयवस्तु का ज्ञान कराता है। तीन से सत्रह तक के श्लोक पाँच त्रिकों में उपनिबद्ध हैं। पहले त्रिक का विषय 'आत्मा का स्वरूप' है। साथ ही साथ यह त्रिक आत्मा के देह तथा संसार के साथ

सम्बन्ध का परिचय भी देता है। दूसरा त्रिक जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन करता है। तीसरा यह बताता है कि ब्रह्म के साथ आत्मा के तादात्म्य की उपपत्ति संभव है। चौथे त्रिक में तुरीयावस्था प्राप्त आत्मा का उल्लेख है। आत्मा के ओंकाररूप सनातन धर्म का ज्ञान पाँचवे त्रिक में कराया गया है। अठारहवें श्लोक में पूर्ववर्ती सत्रह श्लोकों का सार है तथा उन्नीसवां श्लोक आत्मविषयक चिन्तन की वरीयता तथा सद्‌गुरु की असीम कृपा का बोध कराता है। बीसवें श्लोक में दो संकेतों से मुमुक्षुओं को यह बताया गया है कि आत्मोपलब्धि कैसे की जा सकती है तथा इक्कीसवें श्लोक में अज्ञानी तथा आत्मानुभूतिसम्पन्न की तुलना करके आत्मज्ञान का फल बताया गया है।

कई स्थानों पर एक पद के एक से अधिक अर्थ दिये गये हैं। इसके दो कारण हैं: संस्कृत भाषा का स्वरूप तथा श्लोकों के अर्थ की गम्भीरता। यह भी सम्भव है कि दिये गये अर्थों से अधिक अर्थ भी हों।

ॐ श्रीगणेशाय नमः   ॐ श्रीपरमात्मने नमः

नमः परमर्षिभ्यः सद्गुरुभ्यः

॥ अथ आत्मचिन्तनम् ॥

सद्गुरु बाबाजी ने मुमुक्षुओं के लिए साक्षात् मोक्ष के साधन आत्मचिन्तनम् को प्रकट किया है। इसका प्रतिपाद्य आत्मा है। आत्मा (ब्रह्म) को ही चिन्तन का विषय बनाना चाहिए। परम सत्य ब्रह्म को ही प्राप्त करना मनुष्य का उद्देश्य होना चाहिए।

यद्यपि सारा **'आत्मचिन्तनम्'** मंगलमय है तथापि प्रथम श्लोक और भी अधिक मांगलिक है क्योंकि इसमें सगुण तथा निर्गुण दोनों की वन्दना है। यहाँ नमस्कार तथा वस्तुनिर्देशरूप मंगल प्रारम्भ में अपने (मंगल के) सम्पादन की अनिवार्यता का द्योतन करता है । आत्मा अपने अनुपहित रूप में ब्रह्म ही है। अत एव भक्ति और विनय निसर्गतः उसी के उद्देश्य से किए जाते हैं । श्लोक की प्रथम पंक्ति में निर्गुण तथा दूसरी पंक्ति में सगुण ब्रह्म की वन्दना की गई है । आत्मविषयक चिन्तन में भक्ति की अनिवार्यता का प्रतिपादन भी यही श्लोक करता है ।

ॐ नमोऽनन्ताय नित्याय निरस्ताध्यस्तधर्मिणे ।
[१]पुरुषायाप्रमेयाय नमस्ते हेतुहेतवे ॥१॥

अनुवाद - अन्तरहित, सनातन, अध्यारोपित धर्मों से शून्य अर्थात् जीव की हेतुभूत अज्ञानादि उपाधियों से शून्य को प्रणाम। प्रकृति के भी प्रेरक, अचिन्त्य हृदयगुहा में रहने वाले (परम पुरुष) आपको प्रणाम[२] ॥१॥

१. कालेनानवच्छिन्नाय (पाठान्तर)

२. श्लोक के पूर्वार्ध में निर्विशेष अद्वैत तत्त्व की वन्दना की गई है जबकि उत्तरार्ध में हृदयगुहानिवासी परम पुरुष (सगुण ब्रह्म) को नमस्कार किया गया है । नमस्कारद्वय से यहाँ निर्गुण तथा सगुण का समन्वय विवक्षित है।

प्रथम श्लोक में परमतत्त्व की वन्दना की गई है । अब उनके स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है ।

सर्वाश्रयः सकलसर्गमयोऽव्ययश्च
सर्वेश्वरः सफलकर्मकलोऽक्रियश्च ।
सर्वान्तरः सततशान्तिवहोऽवकाशः
जिज्ञास्यतेऽमृतपदाय परात्परो ज्ञः ॥२॥

अनुवाद – (वह परमतत्त्व) सबका आधार है । सारी सृष्टि उसका शरीर है (परन्तु फिर भी) वह अविकारी है । वह सबका नियन्ता है और (सृष्टि आदि) सफल कर्म करने की कला से युक्त होते हुए (भी) निष्क्रिय है । अथवा जीवों को कर्मानुसार फल देने में कुशल होते हुए भी स्वयं क्रियारहित है । सबके भीतर (सार रूप में) निवास करने वाला वह निरन्तर शान्ति को वहन किए रहता है अर्थात् अव्यवहित शान्ति रूप है । वह (सर्वत्र) अनवरुद्ध (व्याप्त) है अर्थात् वह सर्वव्यापक है । शुद्ध ज्ञानस्वरूप (ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान रूप त्रिपुटी से शून्य) है । वह प्रकृति से भी परे है (और अमर पद अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिए) वह जिज्ञासा का विषय बनता है। दूसरे शब्दों में मुक्ति की उपलब्धि के निमित्त जिसको जानने की इच्छा की जाती है ॥२॥

परमतत्त्व के स्वरूप का वर्णन करने के पश्चात् आत्मा के अस्तित्व की प्रामाणिकता का प्रतिपादन पहले त्रिक में किया जाएगा । इस त्रिक के प्रथम श्लोक में बताया जाएगा कि आत्मा सबका स्वयं अपना ही रूप है तथा सब मनुष्यों में रहता है; अतः स्वतःप्रमाणित है तथा सबके द्वारा स्वीकार किया जाता है क्योंकि कोई भी अपने आपको नकार नहीं सकता। यदि अपने आपका निराकरण मान भी लिया जाए तो निराकरण करने वाला ही आत्मा है।

आस्तिके नास्तिके चास्ति सुप्ते जागरितेऽपि च ।
स्वभूतोऽयं स्वतःसिद्ध आत्मा कैर्नैव मन्यते ।
आत्मा सर्वैर्हि मन्यते ॥३॥

अनुवाद – आत्मा आस्तिक तथा नास्तिक दोनों में विद्यमान है । यह सुषुप्ति तथा जाग्रत् दोनों अवस्थाओं में रहता है (स्वप्नावस्था में भी)। आत्मा अपना स्वरूप ही है (अत:) स्वत: प्रमाणित है । किनके द्वारा (ऐसा आत्मा) स्वीकृत नहीं किया जाता? (अर्थात् ऐसे) आत्मा का अस्तित्व सबके द्वारा माना ही जाता है ।।३।।

प्रेमास्पद आत्मा सब प्राणियों के शरीर में विद्यमान है । इसकी सत्ता के कारण ही सब प्राणी अपने–अपने शरीर से प्रेम करते हैं तथा उसमें सन्तुष्ट रहते हैं । चतुर्थ श्लोक यह बताता है कि स्पष्ट रूप से लक्षित प्रेमास्पद आत्मा सभी के द्वारा स्वीकार किया जाता है ।

यतः प्रीताश्च तृप्ताश्च स्वेषु देहेषु जन्तवः ।
प्रेमास्पदं सुसंलक्ष्य[१] आत्मा कैर्नैव मन्यते ।
आत्मा सर्वैर्हि मन्यते ।।४।।

अनुवाद – आत्मा प्रेम का आधार है (क्योंकि इसी से सब प्राणियों को सुख तथा सन्तोष प्राप्त होता है परन्तु अज्ञानवश वे सुख–सन्तोष का स्रोत अपने शरीरों को समझते हैं अत:) अपने शरीरों में प्रसन्न तथा तृप्त रहते हैं । सुन्दर स्वरूप वाला आत्मा शुद्ध अन्त:करण में अच्छी तरह समझा (अनुभूत किया) जा सकता है । ऐसे आत्मा को कौन नहीं मानेगा? (अर्थात्) सब ही ऐसे आत्मा को स्वीकार करेंगे ।।४।।

१. सुसंलक्ष्य – शुद्ध अन्त:करण में आत्मा का अपरोक्ष अनुभव होता है ।

अब यह प्रतिपादित किया जाएगा कि आत्मा की सत्ता सर्वत्र अनुस्यूत है तथा इसीलिए वह सबका सर्वस्व है ।

यस्य भासा विभातीदं भावेऽभावे भवोऽभवः ।
सर्वेषामेव सर्वस्वमात्मा कैर्नैव मन्यते ।
आत्मा सर्वैर्हि मन्यते ।।५।।

अनुवाद – जिसके प्रकाश से अर्थात् आत्मा के प्रकाश से यह जगत् (बाहर तथा भीतर से) प्रकाशित हो रहा है । जब तक (आत्मा की) सत्ता है (दूसरे शब्दों में जब तक आत्मा शरीर या संसार में विद्यमान है) तब तक ही शरीर

या संसार का अस्तित्व है । (आत्मा के) अभाव में (अर्थात् जब आत्मा शरीर या संसार को छोड़ देता है तब शरीर या संसार भी) सत्ताहीन हो जाता है । (अर्थात् संसार या शरीर का विलय हो जाता है) ।।५।।

अथवा – श्रद्धा-भक्ति के रहने पर आत्मा की सत्ता का बोध होता है लेकिन जब श्रद्धा-भक्ति नहीं रहती तब आत्मा की सत्ता भी प्रतीत नहीं होती । (अतः) आत्मा सबका सर्वस्व (सार) ही है । कौन ऐसे आत्मा को नहीं मानेगा? (अर्थात् ऐसे आत्मा के अस्तित्व को वास्तव में) सब लोग स्वीकार करते ही हैं ।।५।।

आत्मा के अस्तित्व की प्रामाणिकता का युक्तिसहित प्रतिपादन किया जा चुका है । अब अग्रिम त्रिक के प्रत्येक श्लोक के पहले तीन चरणों में जीवात्मा का वर्णन है तथा चौथे चरण में आत्मा के वास्तविक स्वरूप का परिचय दिया गया है । प्रथम श्लोक का प्रतिपाद्य विषय है जगत् का अज्ञानमय स्वरूप ।

स्वप्नान् पश्यति सुप्तो वै सुप्तेर्जागर्ति भावितः ।
सुप्तिमात्रं जगद्ध्येतदात्मा साक्षी सदक्षरः ।।६।।

अनुवाद – सोते हुए जीव स्वप्न देखता है, फिर वासनाओं के प्रभाव में ही जागता है । यह संसार सुषुप्ति मात्र ही है (अर्थात् अज्ञान मात्र ही है)। आत्मा साक्षी (भूत, वर्तमान तथा भविष्यकालिक वृत्तियों तथा जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओं का साक्षात् द्रष्टा) है, सत्य तथा अविनाशी है ।।६।।

'यह जगत् सुषुप्ति मात्र है' इस कथन का अभिप्राय आगे स्पष्ट किया जाएगा । अज्ञानकाल में जाग्रदवस्था भी अज्ञानावस्था ही है ।

ज्ञानमज्ञानपर्यन्तं जीवनं मृत्युसंवृतम् ।
स्वप्नवत् सर्वमस्पष्टमात्मा साक्षी सदक्षरः ।।७।।

अनुवाद – (वृत्ति) ज्ञान अज्ञान से आवृत है अथवा जाग्रदवस्था में व्यावहारिक ज्ञान की सत्ता अज्ञान रहने तक रहती है । जीवन मृत्यु की परिधि में है । सब कुछ (व्यावहारिक कार्यकलाप) स्वप्न की तरह अस्पष्ट है । आत्मा साक्षी, सत्य तथा अविनाशी है ।।७।।

अब अग्रिम श्लोक में दृष्टान्त की सहायता से यह प्रतिपादन किया जा रहा है कि तीनों अवस्थाओं तथा दृश्यमान जगत् का अज्ञान से कैसे जन्म होता है?

परमोपात्तपर्जन्यविद्युद्दामाहिसंभ्रम[१]-
भ्राजमानः प्रपञ्चोऽत्र आत्मा साक्षी सदक्षरः ॥८॥

अनुवाद - परब्रह्म (मायारूप) मेघ[२] को स्वीकार करके (अपने को उससे आवृत कर लेते हैं) उस मेघ में चिदाभास[३] या पराप्रकृति भूत जीव रूप विद्युद्-रज्जु (की सत्ता प्रकट होती है) उस बिजली-रज्जु में भ्रम के कारण अपराप्रकृतिभूत[४] जगद्रूप सर्प[५] की प्रतीति होती है। (अभिप्राय यह है कि रज्जु में अहिभ्रम की तरह जीव तथा जगत् का ब्रह्म में आभास होता है) ॥८॥

१. (अ) पर्जन्य का अर्थ अज्ञान की आवरण शक्ति तथा विद्युद् का अर्थ विक्षेप शक्ति लिया जा सकता है । तमस् की आवरण शक्ति वस्तु के वास्तविक स्वरूप को ढक लेती है तथा विक्षेप शक्ति को उत्तेजित होने का अवसर देती है । रजस् विक्षेपशक्ति का उद्भावक है । यह क्रिया स्वरूप है । जब किसी वस्तु का वास्तविक रूप आवरण शक्ति से आच्छादित हो जाता है तो विक्षेपशक्ति से नया रूप उद्भावित होता है। प्रत्येक क्रिया का स्रोत यही विक्षेपशक्ति है ।

(ब) विद्युद्दाम सृष्टिगत सत्य तथा सर्प सृष्टिगत असत्य की ओर इंगित करता है।

२. जैसे सूर्य समुद्र, नदी आदि से पानी लेकर मेघ की सृष्टि करता है तथा उसी मेघ से मानो अपने को आवृत होने देता है । वैसे ही परब्रह्म अपनी ही माया से मानो अपने को ढक लेते हैं या प्रकृति या बुद्धि की सृष्टि करके अपने वास्तविक रूप की अन्यथा प्रतीति कराते हैं परन्तु जिस प्रकार बादल सूर्य से वास्तव में बहुत दूर होते हैं और सूर्य के प्रकाश पर तनिक भी प्रभाव नहीं डालते उसी प्रकार माया से ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप भी प्रभावित नहीं होता ।

३. चिदाभास बुद्धि में आत्मा का प्रतिबिम्ब है । आत्मा, बुद्धि तथा बुद्धिगत आत्मप्रतिबिम्ब के संघात को जीव कहा जाता है । जीव की अन्य अभिधा पराप्रकृति भी है (गीता, ७.२)।

४. अपराप्रकृति दृश्यमान जगत् है जो भ्रमजन्य और वैविध्यपूर्ण है । यह पञ्चमहाभूत, अहंकार तथा बुद्धि से घटित है । (कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ तथा स्थूल शरीर भी इन्हीं तीन घटकों के अन्तर्गत हैं ।)

५. धुंधले प्रकाश में भूमि पर पड़ी हुई रज्जु भ्रम से सर्प जैसी प्रतीत होती है और भय उत्पन्न हो जाता है । उसी तरह चैतन्य के अज्ञान से चैतन्य में ही संसार की प्रतीति होती है और उससे राग द्वेष तथा भय उत्पन्न होते हैं ।

ऊपर जीवात्मा का सामान्यज्ञान बताया गया है । अब ब्रह्म से तादात्म्य की विशेष उपपत्ति प्रस्तुत की जाएगी । क्योंकि आत्मा के सामान्य ज्ञानमात्र से मोक्ष की उपलब्धि नहीं होती इसलिए अग्रिम त्रिक में उन उपायों का विवरण प्रस्तुत किया जाएगा जिनसे जीव अपने वास्तविक स्वरूप (ब्रह्मरूप) की अनुभूति करने में समर्थ होता है ।

एको गतिषु संभिन्नः किंरूपः किल चिन्त्यताम् ।
गुरुयोगात् प्रबुद्धः स्यादात्मा ब्रह्मोपपद्यते ।।९।।

अनुवाद - (जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति) अवस्थाओं में, (नरक, स्वर्गादि विभिन्न) परिस्थितियों में, (शैशव, यौवन तथा वार्धक्य) अवस्थाओं में एक जीवात्मा भिन्न-भिन्न (प्रतीत) होता है । (अतः) निश्चय ही यह चिन्तन करना चाहिए कि जीवात्मा का (वास्तविक) स्वरूप क्या है? (इस चिन्तन के परिणामस्वरूप जीव का ब्रह्म से तादात्म्य होने पर) यह उपपन्न हो जाता है कि जीवात्मा ही ब्रह्म है ।।९।।

अथवा

एक परब्रह्म विभिन्न परिस्थितियों में (विविधतापूर्ण जगत् के रूप में) विविध प्रतीत होता है । (अतः) अवश्य ही यह विचार करना चाहिए कि ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप क्या है? जो शिष्य गुरु के समीप जाकर उनके चरणों की सेवा करता है वह प्रबुद्ध हो जाता है (अर्थात् उसे आत्मस्वरूप का बोध हो जाता है)। (तब) जीव का ब्रह्म के साथ तादात्म्य (भी) उपपन्न हो जाता है ।।९।।

गत श्लोक में 'मैं कौन हूँ?' इस प्रश्न पर विचार करने का संकेत किया गया है । इससे यह भी ज्ञात होता है कि वेद और उपनिषदों तथा गुरूपदेश का श्रवण अनिवार्य है । तदनन्तर ही जिज्ञासु मनन तथा निदिध्यासन को अवलम्बन बना अपने स्वरूप को जानकर ब्रह्मरूप हो जाता है । अगले

श्लोक में ऐसे ध्यान का प्रतिपादन किया जा रहा है जिससे अज्ञानरूप तम के आवरण का नाश होता है और चैतन्यरूप ज्योति प्रकट हो जाती है ।

संयम्य सर्वतो वृत्तिमिन्द्रियाणि मनो मतिम् ।
योऽवशिष्येत् स्वयंज्योतिरात्मा ब्रह्मोपपद्यते ॥१०॥

अनुवाद - सब ओर से वृत्तियों को रोकने पर (अर्थात्) इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि को सब ओर से रोकने पर जो शेष रहता है वह स्वप्रकाश आत्मा है। (इस प्रकार) आत्मा (का) ब्रह्म (के साथ तादात्म्य) उपपन्न हो जाता है।।१०।।

श्रवण के अनन्तर ध्यानयोग रूप मनन का प्रतिपादन कर दिया गया है जिससे आत्मज्योति का प्राकट्य होता है । अधुना निदिध्यासन का विवेचन किया जा रहा है । निदिध्यासन का अर्थ है सुने तथा मनन किए हुए सिद्धान्त को सतत चिन्तन का विषय बनाना और उसको व्यवहार में उतारना जिससे आनन्द स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।

अमानः स्यात् समानः स्यान्निर्द्वन्द्वोऽसङ्ग एव च ।
निष्कामः सर्वदानन्द आत्मा ब्रह्मोपपद्यते ॥११॥

अनुवाद - (मुमुक्षु) निरभिमान तथा समभावयुक्त हो, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों तथा आसक्ति से रहित हो (ताकि) वह निष्काम (कामनारहित) होकर सदा आनन्द से पूर्ण हो सके । (ऐसे) जीवात्मा का ब्रह्म से तादात्म्य युक्तिसंगत हो जाता है ।।११।।

जीवब्रह्मैक्य की उपपत्ति का प्रदर्शन ऊपर किया जा चुका है । अगले त्रिक में निर्विशेष आत्मा का वर्णन किया जा रहा है । जो नीरूपता को स्वीकार करते हुए विभक्त आत्मा या किसी अन्य रूपरहित परम पुरुष में विश्वास रखते हैं; जो आत्मा तथा ब्रह्म की एकरूपता में विश्वास नहीं रखते; और जो शून्यता में आस्था रखते हैं; उनके सिद्धान्तों का निराकरण करके वेदान्त के उस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाएगा जिसके अनुसार आत्मा सत्, अद्वय तथा माया से अछूता है ।

निराकारोऽपरिच्छिन्नः शून्यत्वे नैव सारता ।
चिद्घनो निर्गुणो गूढ आत्माऽद्वैतो निरञ्जनः ॥१२॥

अनुवाद – आत्मा निराकार (आकारशून्य) है (अतः) परिच्छेदरहित अर्थात् अखण्ड है। कुछ लोगों को (इस) नीरूप अखण्डता में शून्यता का भ्रम हो जाता है (लेकिन) शून्यता में सारता का सर्वथा अभाव होता है । (वह आत्मा) चैतन्यघन है, (सत्त्व, रजस्, तमस्) त्रिगुण रहित है; (अतः) छिपा हुआ है। आत्मा अद्वय (तथा) शुद्ध (अर्थात् माया से सर्वथा अस्पृष्ट) है ।।१२।।

अन्य सिद्धान्तों का निराकरण करके यह प्रतिपादित किया गया है कि आत्मा अद्वय होने से एक ही है और माया से वास्तव में अनुपहित है । यहाँ यह संशय हो सकता है कि माया से अपरिच्छिन्न शुद्ध चैतन्यभूत ब्रह्म में पञ्चीकृत जगत् की प्रतीति कैसे होती है? अग्रिम श्लोक में इस शंका का निवारण किया जा रहा है ।

अव्यक्तत्वादचिन्त्यत्वाद् ब्रह्मणि नैव विभ्रमः ।
कूटस्थे तु बहिर्बाह्य आत्माऽद्वैतो निरञ्जनः ॥१३॥

अनुवाद – ब्रह्म में भ्रम है ही नहीं क्योंकि ब्रह्म इन्द्रियों तथा बुद्धि का विषय नहीं है (जो व्यक्त तथा प्रमेय है अर्थात् जो इन्द्रियों तथा बुद्धि का विषय है उसी में भ्रम हो सकता है । बुद्धि ही के किसी कारणवश भ्रान्त होने की संभावना है जो बुद्धि से परे है वह सर्वथा निर्भ्रान्त है)। कूटस्थ ब्रह्म (माया में स्थित प्रतीत होता है) परन्तु भ्रम या संसार तो उसके बाहर ही बाहर है (अर्थात् भ्रम ब्रह्म का स्पर्श नहीं कर सकता)। (इसीलिए) ब्रह्म एक तथा माया से अस्पृष्ट है।।१३।।

ऊपर यह निष्कर्ष निकला है कि अद्वैत आत्मा ब्रह्म है परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि सगुण ब्रह्म की उपासना तिरस्कार्य है। निर्गुण ब्रह्म की उपासना उन मनुष्यों के लिए अत्यन्त कठिन है जो देहाध्यास बुद्धि से ग्रस्त हैं । इसीलिए शंकराचार्य जी ने कहा है कि जब तक द्वैतभावना विद्यमान है तब तक मनुष्यों के लिए सगुण ब्रह्म ही उपास्य है । वास्तव में जैसे बर्फ

तथा पिघली हुई बर्फ में कोई भेद नहीं है वैसे ही सगुण तथा निर्गुण अभिन्न है । ब्रह्म के इन सगुण तथा निर्गुण भावों का प्रतिपादन अगले श्लोक में किया जा रहा है ।

विशिष्ट इष्टतो मान्यो भक्तापेक्षितविग्रहः ।
निर्विशेषः शिवः शान्त आत्माऽद्वैतो निरञ्जनः ॥१४॥

अनुवाद - ब्रह्म भक्त की अपेक्षा या इच्छा के अनुसार शरीर धारण करते हैं। (अतः) अभीष्ट होने के कारण उपासना के योग्य हैं । उपाधिशून्य अर्थात् निर्गुण ब्रह्म कल्याणमय तथा शान्तिपूर्ण है । ब्रह्म द्वैतरहित तथा शुद्ध अर्थात् माया से अपरिच्छिन्न हैं ।।१४।।

गत त्रिक में यह प्रतिपादन किया गया है कि ब्रह्म अद्वैत तथा माया से सर्वथा अस्पृष्ट है । अब वेदों के अनुसार यह बताया जा रहा है कि आत्मा नित्य तथा सबका आधार है । प्रथम श्लोक में पहले आत्मा के ओंकारात्मक स्वरूप से परिचय कराया जा रहा है ।

वेदानां त्रिपदा सारं तस्या ओंकार उच्यते ।
ओंनामासि त्वमेवेति आत्मा धर्मः सनातनः ॥१५॥

अनुवाद - तीन पादों वाला गायत्री (मन्त्र) वेदों का सार है । उस गायत्री मन्त्र का सार ओंकार (अ उ म्) है । ओंकार नाम वाले तुम ही हो (अतः तुम आत्मा[1] हो)। आत्मा सदा रहने वाला (सबका) आधार (धर्म)[2] है ।।१५।।

१. ओंकार की तीन (अ, उ, म्) मात्राओं में बिम्बभूत मात्रारहित तुरीय का प्रतिबिम्ब पड़ता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति --- ये तीनों अवस्थायें अधिष्ठानभूत मात्राहीन तुरीय में अध्यस्त हैं। अतः ओंकार आत्मा (ब्रह्म) का वाचक है ।

२. धर्म धृ धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना । आत्मा सबका धारक तथा पोषक है। अतः धर्म है ।

गत श्लोक का निष्कर्ष यह है कि ओंकार ब्रह्म है। अतः सबका सनातन आधार है । अग्रिम श्लोक में ओंकार (प्रणव) की मात्राओं के अर्थों तथा उनके ज्ञान के फल का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

मात्राऽवस्था समाख्याता जानन्नेति त्रिधा गतिम् ।
अमात्रो निर्गतिस्तुर्य आत्मा धर्मः सनातनः ॥१६॥

अनुवाद - ओंकार (प्रणव) की तीन (अ, उ तथा मकार) मात्रायें (जीव की जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति तीन अवस्थाओं के) समान कही गयी हैं। इन तीन मात्राओं के ज्ञान से (विश्व[१], तैजस[२] तथा प्राज्ञ[३] रूप) तीन प्रकार की गति प्राप्त होती है । (आत्मा की) चौथी (अवस्था) मात्राहीन तथा गतिशून्य है । (ऐसा ओंकार रूप) आत्मा (सबका) सनातन आधार है ॥१६॥

१. जो अकार मात्रा की जाग्रदवस्था के साथ एकरूपता को जान लेता है इसी जन्म में अथवा जन्म लेकर वह समस्त विश्व के ऐश्वर्यों का उपभोग करता है तथा जगत् में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है । विश्व का ज्ञान प्राप्त कर उसका वैश्वानर के साथ तादात्म्य हो जाता है।

२. जो उकार तथा स्वप्नावस्था की एकरूपता का ज्ञान कर लेता है वह सूक्ष्म तत्त्वों के ज्ञान तथा अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है । तैजस का ज्ञान प्राप्त कर उसका हिरण्यगर्भ के साथ तादात्म्य हो जाता है ।

३. जो मकार तथा सुषुप्ति की एकरूपता जान लेता है वह एकाग्रता तथा निष्कामता से सम्पन्न हो जाता है । प्राज्ञ का ज्ञान प्राप्त कर उसका अव्यक्त (ईश्वर) के साथ तादात्म्य हो जाता है ।

ऊपर यह प्रतिपादन किया गया है कि प्रणव की तीन मात्राओं का ज्ञान तीन प्रकार की अवस्थाओं की उपलब्धि कराता है और आत्मा की चौथी अवस्था में मात्रा तथा गति का अभाव होता है और वह तुरीयावस्था कही जाती है । अब यह बताया जाएगा कि प्रणव प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों मार्गों में प्रयुक्त होता है । ओंकारस्वरूप आत्मा ज्ञानकाण्ड (वेदान्त) तथा कर्मकाण्ड (पूर्वमीमांसा) दोनों को केवल स्वीकार ही नहीं करता प्रत्युत सब प्रकार की उपासना तथा हर प्रकार की प्रवृत्ति (नास्तिक तथा आस्तिक) को भी स्वीकार करता है ।

ओमित्युक्त्वा प्रवर्तन्ते निवर्तन्तेऽथ ब्राह्मणाः ।
ओं सर्वं स्वीकरोतीव आत्मा धर्मः सनातनः ॥१७॥

अनुवाद - प्रणव का उच्चारण करके ब्राह्मण लोग कार्य प्रारम्भ करते हैं और ओम् का उच्चारण करके ही कर्म से निवृत्त (भी) होते हैं । ओम् (आत्मा) सब (विश्वास तथा प्रवृत्तियों) को स्वीकार करता हुआ सा प्रतीत होता है (ओम् का एक अर्थ 'स्वीकृति' भी है । वास्तव में आत्मा विश्वास, प्रवृत्ति तथा उनकी स्वीकृति से सर्वथा अलग ही है)। ओंकार रूप आत्मा सब का नित्य आधार है ।।१७।।

वेदों के आधार पर यह बताया गया कि आत्मा अद्वैत तथा सबका नित्य अधिष्ठान है । प्रणव की महत्ता का प्रतिपादन भी कर दिया गया है । उपर्युक्त प्रतिपादित विषय को अग्रिम श्लोक में अन्य शास्त्रों से युक्ति देकर पुष्ट किया जा रहा है ।

स्फुरति विशति संविद् यत्र सकृद् विभातः
विविधविभवभावान् नेहते नेति नेति ।
अविदितविदिताभ्यामन्यताऽनन्य एव
अहमिति परिपूर्णप्रत्ययः प्रत्यगात्मा ॥१८॥

अनुवाद - जिस ब्रह्म में संवेदन रूप ज्ञान[१] (सृष्टि के आरम्भ में **'तदैक्षत'** श्रुति से लक्षित ईश्वरीय ईक्षणवृत्ति) स्फुरित होता है (तथा उसी में) लय को प्राप्त होता है, (वह आत्मा) एक बार (ही) प्रकाशित हुआ (अर्थात् स्वयं ही सदा एक रूप से प्रकाशमान है)[२]। **'नेति नेति'** रूप उपनिषद् के आदेश से अनेक प्रकार के ऐश्वर्य तथा भावों को (वह) नहीं चाहता[३] अर्थात् स्वीकार नहीं करता । ज्ञात तथा अज्ञात दोनों से उसकी विलक्षणता[४] है (वह) अन्य से भिन्न अर्थात् निज स्वरूप ही है । मैं सब प्रकार से पूर्ण (अर्थात् परिपूर्ण) स्वरूप वाला सर्वान्तर आत्मा हूँ[५] ।।१८।।

१. संविद् का अर्थ संवेदनरूप ज्ञान है अथवा स्फुरणाभिमुख चैतन्य भी हो सकता है। यह समष्टि-अहंकार में स्फुरणरूप सृष्टिप्रक्रिया को लक्षित करता है और ब्रह्म के तटस्थ लक्षण **(जन्माद्यस्य यतः)** की ओर इंगित करता है अर्थात् ब्रह्म वह है जिससे सृष्टि का जन्म तथा जिसमें सृष्टि की स्थिति तथा लय होते हैं । प्रत्यगात्मा में

जाग्रदवस्था में वृत्तिरूप ज्ञान उदित होता है तथा सुषुप्ति में लीन भी होता है । इस प्रकार **'स्फुरति विशति संविद्'** वाक्य को समष्टि तथा व्यष्टि दोनों स्तरों पर समझ कर चिन्तन का आलम्बन बनाया जा सकता है ।

२. **'दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं
सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरम् ।
अलेपकं सर्वगतं यदद्वयं
तदेव चाहं सततं विमुक्तमोमिति ॥' उपदेशसाहस्री** ७३(१०.१)

वेदान्तसार की सुबोधिनी टीका में उपर्युक्त पद्यांश **'सकृद्विभातम्'** पर टिप्पणी करते हुए नृसिंह सरस्वती कहते हैं **'सकृदेकदैव विभातं सर्वदैकस्वरूपेण भासमानं चन्द्रादिप्रकाशवन्न वृद्धिक्षयशीलमित्यर्थः सकृद्विभातः'।** पद्यांश का अनुवाद करते हुए इसी भाव को ध्यान में रखा गया है ।

३. ईश्वर की ईक्षणवृत्ति के उदय होने पर वैविध्यपूर्ण जगत् की उत्पत्ति होती है । इसमें अनेक ऐश्वर्य तथा सर्वज्ञत्वादि भावों की सत्ता है ब्रह्म में वास्तव में इनकी सत्ता है ही नहीं । 'नेति नेति' से यही दर्शाया गया है ।

४. प्रत्यगात्मा विदित तथा अविदित इन दोनों से भिन्न है। इसलिए श्रुति कहती है कि आत्मा अनन्य है, भेदशून्य है अतः अद्वैत है । आत्मा के अद्वैत होने का तात्पर्य है कि वह सबका अपना स्वरूप ही है ।

यदि **'अन्यताऽनन्य'** में तृतीया समास मान लिया जाए तो भी अन्यता का अन्वय 'अनन्य' में हो जाता है, इस प्रकार 'विदित' तथा 'अविदित' से अन्यता होने के कारण आत्मा अनन्य (अभिन्न) है अर्थात् सबका अपना स्वरूप है ।

अन्यदेव तद् विदितादथो अविदितादधि (**केनोपनिषद्** १.४) के शांकरभाष्य का सार **'अविदितविदिताभ्यामन्यता'** श्लोकांश में संगृहीत है। शंकराचार्य ने **'अविदितादधि'** में उपर्यर्थक 'अधि' का लक्ष्यार्थ **'अन्यद्'** माना है । यह प्रसिद्ध ही है कि जो जिससे ऊपर होता है वह उससे अन्य होता है । जो व्याकृत, व्यक्त तथा दुःखात्मक है, वह 'विदित' कोटि में आता है क्योंकि वह ज्ञान का विषय बनता है। व्याकृत का मूल अव्याकृत 'अविदित' है क्योंकि वह ज्ञान का विषय नहीं बनता । 'विदित' तथा 'अविदित' दोनों ही परस्पर परिच्छिन्न (सीमित) हैं और आत्मा (ब्रह्म) इनसे अन्य (आगे तथा ऊपर) है अर्थात् अपरिच्छिन्न है । परिच्छिन्न भेदयुक्त होता है तथा अपरिच्छिन्न स्वभाव से ही भेदशून्य, अपरिच्छिन्न होने से (ब्रह्म) भेदशून्य, अद्वैत तथा सबका निज स्वरूप ही है ।

५. स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर से भी जो और भीतर है वह प्रत्यगात्मा है उस (अन्तरात्मा) को समाधि की **'अहं ब्रह्मास्मि'** रूप अखण्डाकारवृत्ति में यह अपरोक्ष अनुभव होता है कि मैं सब प्रकार से पूर्ण हूँ अर्थात् ब्रह्म हूँ।

यहाँ तक जो कुछ भी कहा गया है वह कपोल-कल्पित नहीं प्रत्युत वेदों का यथार्थ आशय है । यह तथ्य अगले श्लोक में स्पष्ट किया जा रहा है ।

निगमगदिततत्त्वं प्रस्तुतं सत्यसत्यम्
अमृतमभयमेतद् भाव्यते भाग्यवद्भिः ।
दमयति दमनीयं दक्षिणामूर्ति[1] मौनं
गमयति पदमन्त्यं स्वस्तिमूलं मुमुक्षून् ॥१९॥

अनुवाद - ऊपर प्रतिपादित वेदोक्त तत्त्व है (और इसलिए यहाँ) पारमार्थिक सत्य ही प्रस्तुत है। यह अमृत (आनन्दमय तथा) अभय स्वरूप है तथा भाग्यशाली मनुष्यों के द्वारा (ही) चिन्तन का विषय बनाया जाता है । शिव का मौन कामक्रोधादि का निवारण करता है तथा मुमुक्षुओं को कल्याण के हेतु परमपद की प्राप्ति कराता है ॥१९॥

१. शिव के एक रूप सद्गुरु भी दक्षिणामूर्ति नाम से जाने जाते हैं । **दक्षिणश्च अमूर्तिश्च** समास करने पर 'परमात्मा' भी अर्थ होता है । क्योंकि वे परमात्मा सृष्टि रचना में कुशल (दक्षिण) होते हुए भी मूर्तिरहित (नीरूप) हैं। इसलिए दक्षिणामूर्ति कहे जाते हैं।

आत्मतत्त्व अतिसूक्ष्म तथा दुर्विज्ञेय है । आत्मतत्त्व के सम्यक् बोध में एक बार श्रवण से सफलता प्राप्त नहीं होती । अतः इसकी बार-बार आवृत्ति करनी चाहिए । यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम आत्मबोध को असम्भव समझकर आत्मविषयक चिन्तन का सर्वथा त्याग न कर दें क्योंकि आत्मा का ज्ञान निश्चित रूप से प्राप्य है । यही बात अगले श्लोक में कही जा रही है और दृष्टान्त की सहायता से पूर्वोक्त सत्य का और भी अधिक स्पष्टता से प्रतिपादन किया जा रहा है ।

परं स्वं स्वं परं मत्वा मृगवन्मृग्यते मृषा ।
शाखाग्रे लक्ष्यते लीनो धीरैरभ्युपलभ्यते ॥२०॥

अनुवाद – शरीरादि को आत्मा समझकर तथा अपने आत्मा को अन्य (पृथक् परमपुरुषादि) समझकर मनुष्य व्यर्थ में ही मृग की तरह (सुखसन्तोषादि की) खोज करता है। (जैसे बच्चे को आकाश में प्रतिपदा का चन्द्रमा दिखाने के लिए पहले उसे) शाखा के अग्र भाग में (उसकी स्थिति लीन रूप में दिखाई जाती है तब वह चन्द्रमा वहाँ) लीन अर्थात् ढका हुआ दिखाई देता है । (उसी प्रकार पाँच कोशों[१] में आच्छादित उपनिषदों तथा यहाँ **'आत्मचिन्तनम्'** में शाखाग्र चन्द्र की तरह दिखाई पड़ने वाला आत्मा) धीर पुरुषों के द्वारा प्राप्त किया जाता है ।।२०।।

१. अन्नमयकोश (शरीर), प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश तथा आनन्दमयकोश – ये पाँच कोश आत्मा को मानो आच्छादित किए रहते हैं। आत्मा के समीपतम आनन्दमयकोश तथा बाह्यतम अन्नमयकोश है ।

गत श्लोक का निष्कर्ष यह है कि धीर पुरुष ही आत्मा का साक्षात्कार करते हैं । अब आत्मा की अपरोक्षानुभूति के पूर्व तथा पश्चात् की अवस्था संसार के सन्दर्भ में कैसी होती है? यह अगले श्लोक में प्रतिपादित किया गया है ।

अस्मिन् बृहति ब्रह्माण्डे लघुरूपोऽहमीदृशः ।
आत्मतत्त्वे च विज्ञाते लघुरूपोऽयमीदृशः ।।२१।।

अनुवाद – (आत्मज्ञान से पूर्व मनुष्य संसार के सन्दर्भ में अपने को) इस विशाल संसार में 'मैं ऐसे छोटे रूप वाला हूँ' (ऐसा समझता है) आत्मतत्त्व विज्ञात होने पर (संसार का) लघुरूप जान लेता है । ऐसे छोटे रूप वाला यह संसार है (जैसे हथेली पर रखा हुआ आंवला) ।।२१।।

हरिः ॐ तत्सत्
इत्यात्मचिन्तनम् ।

ॐ श्रीगणेशाय नमः

॥ अथ बदरीशस्तवनम् ॥

कृत्वा पुराऽखिलजगत् खलु मूर्तिमद् वै
मूर्तेर्मुहुः स्वयमभूदपि मूर्तिमान्यः ।
अद्यावधि कृतयुगाद् बदरीवनेऽस्मिन्
श्रेयो दधाति भगवान् स तु मद्विधानाम् ॥१॥

अनुवाद - पहले अमूर्त असत् (नामरूप से अव्याकृत) जगत् को मूर्तिमान् करके अर्थात् नामरूप से व्याकृत करके पुनः स्वयं भी धर्म की पत्नी मूर्ति से मूर्तिमान् हुए अर्थात् प्रकट हुए, अवतार धारण किया। सत्ययुग से लेकर आज तक आप इस बदरीवन में विराजमान होकर हम जैसे मुमुक्षुओं का कल्याण कर रहे हो ॥१॥

वेदा हि प्राणप्रभवा भवतो भवन्ति
धर्मात्पुनः स्वयमभूद् यतिधर्मधारी ।
सोऽयं तपस्तपति वा उपरामवृत्तिर्
विष्णुर्विहाय कमलां कमलासनस्थः ॥२॥

अनुवाद - चारों वेद आपके निःश्वास हैं । आपके प्राणों से प्रकट हुए हैं। आपने धर्म से उत्पन्न होकर यतिधर्म धारण किया । वे भगवान् विष्णु उपरति-वृत्ति से युक्त होकर लक्ष्मी को छोड़कर पद्मासन में स्थित होकर यहाँ तपस्या करते हैं ॥२॥

हास्याय ते स्तव इतो मनसोऽतिगोऽसि
कामादयस्तु हसितात् स्वमदं त्यजन्ति ।
युक्ता हि कीर्तिरिति वै किल देवदेव
दीनं विहीनदयितं कुरु मां सनाथम् ॥३॥

अनुवाद – आपकी स्तुति आपके लिए हँसी का कारण बन सकती है क्योंकि आप मन से परे हैं । परन्तु आपके हँसने से तो काम क्रोधादि अपना घमण्ड छोड़ देते हैं कि वे अजेय हैं अर्थात् वे सरलता से वश में आ जाते हैं। हे देवाधिदेव ! आपका यह यश युक्तिसंगत है कि आपकी हँसी से कामादि वश में आ जाते हैं । हे प्रभो ! प्रिय जनों से हीन इस दीन को सनाथ कीजिए ।।३।।

आत्मा त्वमेव जगतः प्रणयाऽऽस्पदो[१]ऽतः
तृप्ताऽखिला स्वतनुषु त्वनुरागयुक्ता ।
जानन्ति ते न मृगवन् निजनाभिगन्धं
मायाचमत्कृतिरियं भवतो विचित्रा ।।४।।

अनुवाद – आप जगत् की आत्मा हैं । इसलिए आप सबके प्रेम का आश्रय हैं । यही कारण है कि अपने शरीरों के प्रति अनुरागात्मक होकर सब अपने में तृप्त हैं। जैसे हिरण अपनी नाभि में स्थित कस्तूरी की गन्ध को नहीं पहचान पाता उसी प्रकार सबके हृदय रूपी गुफा में स्थित आपको लोग नहीं जान पाते । आपकी माया का यह चमत्कार आश्चर्यजनक है ।।४।।

दैत्यास्तु भीतिविकला भवतः स्वरूपं
दृष्ट्वा द्रवन्ति विमुखास्तमसः स्वभावात् ।
सिद्धास्तु शुद्धमतयो मुनयो नमन्ति
सर्वेऽपि कौशिकसमाः सवितुः प्रकाशम् ।।५।।

अनुवाद – तामसिक स्वभाव वाले होने के कारण दैत्य आपके स्वरूप को देखकर भयभीत हो जाते हैं और आपसे विमुख होकर ऐसे भाग जाते हैं जैसे सूर्य का प्रकाश देखकर उल्लू भाग जाते हैं । शुद्ध बुद्धि वाले विश्वामित्र के समान मुनिगण तो आपको नमस्कार करते हैं अर्थात् आपके सम्मुख बने रहते हैं ।।५।।

१. प्रणयास्पदं च (पाठान्तर)।

[१]भोक्ताऽसि भावितगतिः पतिरिन्द्रियाणां
चैतन्यमिष्टघनवत् स्वयमेव भोगः ।
सर्वत्र वा मधुरता भवतां भवद्वत्
कर्मादिविकृतिवतां न तु सा विभाति ॥६॥

अनुवाद – हे परमेश्वर ! आप में गति कल्पित है। आप भोक्ता हैं तथा इन्द्रियों के स्वामी हैं । चैतन्यरूप माधुर्यघन की तरह आप स्वयं ही भोग हैं। आपके समान आपका माधुर्य सर्वत्र है परन्तु कर्मादि के विकार से विकृत व्यक्तियों के अनुभव का विषय नहीं बनता । दूसरे शब्दों में, कल्पित गति के कारण भोक्ता, भोग तथा भोग्य – तीनों आप ही हैं ।।६।।

१. भोक्ताऽस्ति (पाठान्तर)।

नामाऽपि ते च मधुरं मधुरं स्वरूपं
कर्माऽपि ते च मधुरं मधुरा स्मृतिश्च ।
बुद्धिं प्रबोधय प्रभो मधुबोधशक्तिं
भक्तिं प्रयच्छ परमां परिभावयामि ॥७॥

अनुवाद – आपका नाम भी मधुर है । आपका स्वरूप भी मधुर है । आपका कर्म भी मधुर है । आपका स्मरण मधुर है । मधु अर्थात् माधुर्य आनन्द का बोध करने की शक्ति से युक्त बुद्धि को आप जागृत कर दीजिए । एकाग्र मन से यह भावना करता हूँ कि हे परमात्मन् ! मुझे उत्कृष्ट भक्ति दीजिए ।।७।।

कर्मादिदोषदहनो दुरिताय चाग्निः
अन्तःप्रमादप्रभवे तमसेऽस्ति सूर्यः ।
ज्ञानोष्णताप्रशमनः परमो हिमांशुः
सोऽसौ प्रकाशयतु वै हृदयेऽस्मदीये ॥८॥

अनुवाद – भक्तों के पाप को जलाने के लिए आप अग्नि हैं । आन्तरिक प्रमाद से उत्पन्न अन्धकार के लिए आप सूर्य हैं । ज्ञान की उष्णता को शान्त करने के लिए आप उत्कृष्ट चन्द्रमा हैं । ऐसे प्रभु आप हमारे अन्तःकरण में प्रकाशित हों ।।८।।

नाशादिशून्यवदनं[१] किल कीर्तिमन्तं
कृष्णं परन्तु परमं सुभगं शरीरम् ।
लक्ष्म्यादिसेवितपदं प्रथितं निरीहं
वन्दे विनीतशिरसा बदरीविशालम् ॥९॥

अनुवाद – नासिकादि से रहित मुख वाले अथवा नाशादि छः विकारों से रहित आप निश्चित रूप से कीर्तिमान् हैं । कृष्ण रूप वाले होने पर भी अत्यन्त सुन्दर स्वरूप वाले हैं । लक्ष्मी आदि से सेवित चरण वाले प्रसिद्ध निष्क्रिय बदरीविशाल को नतमस्तक होकर प्रणाम करता हूँ ॥९॥

१. पाठान्तर – नासादिशून्यवदनं ।

दुष्टः सहस्रकवचो भवता विनष्टो
हृष्टाः सुराः सुचरितैः ऋषयश्च तुष्टाः ।
पुष्टा जनास्तव कथामृतपानपूताः
भूताऽत्र कीर्तिरिति वै परमप्रकृष्टा ॥१०॥

अनुवाद – दुष्ट सहस्रकवच नामक दैत्य आपके द्वारा मारा गया । देवता आपके रमणीय आचरण से प्रसन्न हो गये और ऋषि सन्तुष्ट हो गये । आपकी कथा रूप अमृतपान से पवित्र भक्तजन और पुष्ट हो गए तथा इहलोक में आपकी उत्तम कीर्ति व्याप्त हो गयी ॥१०॥

जित्वा रिपुं सह बलैरतिथिं चकार
चात्मस्वरूपममलं परिभाव्य भूयः ।
अन्यत्प्रभावमतुलं सहसा विलोक्य
स्वर्गं गतः स्मर इतीव सदा स्मरामि ॥११॥

अनुवाद – सेनासहित शत्रु को जीत कर अतिथि बना लिया अर्थात् शत्रु के भागने पर उसे बुला कर अतिथि की तरह सत्कार दिया । आप निर्मल आत्मस्वरूप में स्थित हो गये । आपके अनुपम तथा अतुल प्रभाव को देख कर कामदेव स्वर्ग को चला गया । इस घटना का सदैव स्मरण करता हूँ ॥११॥

संन्यासमूलमथ वैष्णवभक्तितत्त्वं
संव्यज्यतेऽत्र युगपत् त्वयि वेदवेद्ये ।
त्वं निर्गुणश्च सगुणः सदयः सदैव
नारायणो नरसखः शरणं ममास्तु ॥१२॥

अनुवाद - वेदों से जानने योग्य आप में संन्यास का मूल और वैष्णव भक्तितत्त्व व्यक्त होते हैं । आप निर्गुण हैं लेकिन सगुणरूप धारण करके भक्तों पर सदा दया करते हैं । हे नर के सखा नारायण, आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिए ॥१२॥

॥ इति बदरीशस्तवनम् ॥

॥ अथ गोविमर्शनम् ॥

ब्रह्मर्षिवन्दितां ब्राह्मीं राजर्षिपरिसेविताम् ।
देवाश्रयकृतां दिव्यां वेदानुमोदितां नुमः ॥१॥

अनुवाद – ब्रह्मर्षि (वसिष्ठ जी) द्वारा पूजित, ब्रह्ममयी, राजर्षि (दिलीप जी) द्वारा सेवित, जिसको देवताओं ने अपना आश्रय बनाया, (अतः) जिसकी दिव्यता तथा ब्रह्मभाव वेदों द्वारा समर्थित है, उस दिव्य गौ माता को हम प्रणाम करते हैं ॥१॥

पवित्रपांसुलां पूतां परितः पुण्यदर्शनाम् ।
इहामुत्र श्रियं वन्दे मातरं जगतामहम् ॥२॥

अनुवाद – पवित्र धूलवाली, सब प्रकार से पुण्य दर्शन वाली, इस लोक तथा परलोक की लक्ष्मी तथा (सकल) जगत् की माता की मैं वन्दना करता हूँ ॥२॥

अपवादः समानोऽत्र पिबन्त्येव पशोः पयः ।
गवां तु तत्र वैशिष्ट्यं येनासां मातृता मता ॥३॥

अनुवाद – दूध पीने मात्र हेतु से ही (गौ तथा महिषी आदि में मातृत्व प्रसक्त होना) समान रूप से दोषयुक्त है । परन्तु गायों में दूध देने के अतिरिक्त ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके फलस्वरूप मनुष्यों के लिए भी गाय का मातृत्व सुसम्मत है ॥३॥

ओंकारमथ हुंकारं व्याहरन्ती सुमङ्गला ।
गोमाता व्यक्तमाख्याता उमा अम्बा च रम्भणात् ॥४॥

अनुवाद – ओंकार तथा हुंकार का उच्चारण करने से गाय कल्याणमयी है। रम्भाने में 'उमा' तथा 'अम्बा' (मातृवाचक शब्दों) का स्पष्ट श्रवण होने से उसका मातृत्व स्पष्ट रूप से अभिहित है।।४।।

धर्मधात्री धरारूपा यज्ञयोग्यार्थदायिनी ।
गोमाता व्यक्तमाख्याता वत्सला च पयस्विनी ॥५॥

अनुवाद - पृथ्वीस्वरूपा गाय यज्ञोपयोगी पदार्थों को देने वाली है । अतः सनातन धर्म की धात्री (माता) है और वात्सल्य तथा दूध देने वाले भावों से भी गाय का मातृत्व स्पष्ट रूप से कह दिया गया है ॥५॥

बालाय चापि वृद्धाय रोगिणे योगिने हिता ।
गोमाता व्यक्तमाख्याता दुर्बलपक्षपोषणात् ॥६॥

अनुवाद - बालक, वृद्ध, रोगी तथा योगी (सब) का गाय हित करने वाली है । दुर्बल पक्ष का पोषण करने के कारण गाय का मातृत्व सुस्पष्ट है ॥६॥

द्वित्राः शावकाः सन्ति स्तनौ द्वावेव केवलम् ।
नैव न्याय्यमजादुग्धं भावहिंसा न मातृता ॥७॥

अनुवाद - बकरी के केवल दो स्तन होते हैं और उसके शावक दो-तीन, इसलिए मनुष्यों को बकरी का दूध लेना न्याय्य नहीं है क्योंकि उससे भावहिंसा होती है । इसी भावहिंसा के कारण मातापन बकरी में प्रसारित नहीं होता ॥७॥

महिषी भावशून्या हि गावोऽन्या[१] न्यूनलक्षणाः ।
सास्नावती स्वतःपूर्णा पञ्चगव्यविधायिनी ॥८॥

अनुवाद - भैंस में मनुष्यों के लिए वात्सल्य भाव नहीं है और अन्य गायों में (नीलगाय या विदेशी गायों में) ब्राह्मी गायों के लक्षण की न्यूनता है । सास्ना (गलकम्बल) से युक्त गाय स्वतःपूर्ण होती है क्योंकि वह दूध, दही, घी और गोबर एवं मूत्ररूप पञ्चगव्य प्रदान करती है । (पञ्चगव्य ब्राह्मी गाय का ही होता है, अन्य कोटि की गायों का नहीं) ॥८॥

१.तथाऽन्या (पाठान्तर)।

भुक्तं पीतं च यत्किञ्चित् पवित्रमुपजायते ।
शापवशान्मुखं दुष्टं नैष दोषो वसुन्धराम्[१] ॥९॥

अनुवाद – गाय जो कुछ खाती, पीती है वह पवित्र हो जाता है । शिव जी के शाप के कारण मुख अपवित्र होने पर भी पृथिवी रूपी गाय को यह दोष नहीं लगता ।।९।।

१. यह लुप्तक्रियाक कर्म है – 'वसुन्धरां दोषो न गच्छति ।'

बन्धनं ग्रन्थवच्चास्या हितायैवोपयुज्यते ।
विक्रयो ह्युपलब्ध्यर्थं देवसेवाप्रसादवत् ॥१०॥

अनुवाद – गाय के हित के लिए गाय को बांध कर रखना वैसे ही उपयुक्त है जैसे ग्रन्थ को वस्त्र में बांधकर रखना । अभिलाषी को उपलब्ध कराने के लिए जैसे बदरीनाथ जी में पिण्ड का प्रसाद, जगन्नाथपुरी में कर्मचारियों को सेवा में मिला हुआ प्रसाद स्वत्व निवारण के लिए है वैसे ही अभिलाषी को प्राप्त कराने हेतु गाय की बिक्री कर सकते हैं ।।१०।।

समं पयस्तु पुत्रेण विक्रेतव्यं न कर्हिचित् ।
कन्यापण्यं गवां पण्यं प्रथाप्यस्ति पुरातनी[२] ॥११॥

अनुवाद – ब्राह्मी गाय का दूध पुत्र के समान है । अतः दूध कदापि बेचना नहीं चाहिए । उपर्युक्त अवस्था के अतिरिक्त गाय का बेचना, कन्या के बेचने के समान निन्दनीय है ।।११।।

२. सनातनी (पाठान्तर)।

यत्र गौस्तत्र गङ्गापि यत्र गौस्तत्र वै रमा ।
गोमूत्रे संस्थिता गङ्गा गोमये कमलालया ॥१२॥

अनुवाद – जहाँ गाय है वहाँ गङ्गा जी (भी) हैं तथा जहाँ गाय है वहाँ लक्ष्मी का भी निवास है, क्योंकि गोमूत्र में गङ्गा जी तथा गोबर में लक्ष्मी जी का निवास है ।।१२।।

ब्रह्माद्या देवताश्चास्याः प्रतिष्ठाने[१] प्रतिष्ठिताः ।
पूजिता यत्र गावः स्युः देवतास्तत्र पूजिताः ॥१३॥

अनुवाद – ब्रह्मादि सब देवता गाय के शरीर में प्रतिष्ठित हैं । अतः जहाँ गायों की पूजा होती है वहाँ देवता भी स्वयमेव पूजित हो जाते हैं ।।१३।।

१. प्रत्यङ्गेषु (पाठान्तर)।

यत्र गावः प्रसन्नाः स्युः प्रसन्नास्तत्र सम्पदः ।
यत्र गावो विषण्णाः स्युर्विषण्णास्तत्र सम्पदः ॥१४॥

अनुवाद – जहाँ गाय प्रसन्न रहती है वहाँ सभी सम्पत्तियाँ प्रसन्न रहती हैं । जहाँ गायें दुःख पाती हैं, वहाँ सारी सम्पदायें दुःखी हो जाती हैं अर्थात् वह स्थान सम्पत्ति से शून्य हो जाता है ।।१४।।

ओजस्तेजश्च[२] राष्ट्रस्य भावना च पवित्रता ।
गौश्चापि भारतं वर्षं देशभक्तैर्विचार्यताम् ॥१५॥

अनुवाद – गाय राष्ट्र का ओज, तेज, भावना तथा पवित्रता है । और तो क्या गाय (चलता फिरता) भारत ही है। देशभक्त (इस पर) विचार करें। ।।१५।।

२. तेजो हि (पाठान्तर)।

श्रद्धया पूज्यतामद्य श्रद्धापूजास्वरूपिणी ।
गोपालानुचरन्तीयं भवतामस्तु कामधुक् ॥१६॥

अनुवाद – गाय श्रद्धा तथा पूजा की मूर्ति है । (अतः वर्तमान काल में या विशेषतः गोपाष्टमी के दिन) श्रद्धा भक्ति से गाय की पूजा करनी चाहिए । कृष्ण भगवान् का अनुगमन करने वाली (या कृष्ण भगवान् जिसके पीछे चलते हैं) गाय माता आपके लिए कामधेनु बने (अर्थात् आपकी सकल कामनाओं को पूरा करे । यह गाय को श्रद्धा रूप से सेवा करने वाले भक्तों को श्री पूज्य बाबा जी का आशीर्वाद है)।।१६।।

॥ इति गोविमर्शनम् ॥

ॐ श्रीगणेशाय नमः

॥ अथ विरक्तगीतम् ॥

आदौ वसन्तात् शीतान्तकाले
गावोऽपि यस्मिन् यान्ति प्रकम्पम् ।
अश्वत्थमूले रिक्तो विरक्तः
जङ्घां हनुं च संयुज्य सम्यक् ॥१॥

अनुवाद - शीत ऋतु के अन्त में तथा वसन्त के प्रारम्भ में जिस समय गाय भी काँप जाती है उस समय अश्वत्थ के मूल में एक अकेला विरक्त अथवा संसार के व्यापारों से रहित एक विरक्त जाँघ तथा ठोड़ी को अच्छी तरह जोड़ कर बैठा था ॥१॥

सम्पूर्णरात्रौ संचिन्त्य किञ्चित्
गर्भस्थबालो यद्वद्धि तद्वत् ।
प्रातःप्रकाशं प्राचीं प्रतीक्ष्य[१]
गीतं समागात् स्वस्थस्तदित्थम् ॥२॥

अनुवाद - सारी रात गर्भस्थ बालक की तरह कुछ चिन्तन करता रहा। प्रातःकालीन प्रकाश और पूर्व दिशा को देखकर एक गीत उस विरक्त के मन में स्फुरित हुआ । वह अपने स्वरूप में स्थित हो गया ॥२॥

याता त्रियामा[२] जातं प्रभातम्[३]
भास्वान् प्रभूतः[४] शीतं समाप्तं [५] गीतं समाप्तम्[६] ॥३॥

अनुवाद - इस प्रकार रात्रि बीत गयी । प्रभात उदित हो गया । विपुल प्रकाश से युक्त सूर्य देवता प्रकट हो गये । शीत समाप्त हो गयी और शीत की समाप्ति के साथ गीत भी समाप्त हो गया अर्थात् संसार का सर्वथा उपराम हो गया ॥३॥

१. ज्ञान के उदय के लिए तथा ज्ञानोदय के प्रकाश के लिए धैर्य तथा ललक के साथ प्रतीक्षा करता रहा कि सही समय पर ज्ञान का उदय होगा।
२. त्रियामा का अर्थ तीन गुण अथवा जीव की तीन अवस्थाएँ ।
३. सुबह हुआ अर्थात् ज्ञान का प्रकाश आया ।
४. सूर्य उदित हुए अर्थात् आत्मा का प्राकट्य हुआ ।
५. शीत समाप्त हुआ अर्थात् अज्ञानरूपी शीत समाप्त हो गया ।
६. गीत समाप्त हो गया अर्थात् संसाररूपी गीत समाप्त हो गया ।

॥ इति विरक्तगीतम् ॥

श्रीगणेशाय नमः

॥ हिमाचलचित्रेषु गङ्गावर्णनम् ॥

क्वचित् काचित् कन्या पतति पितुरङ्कादिव पुरो
ब्रुवन्ती वा बालोचितवचनमेवं कलकलः ।
नदीभिः खेलन्ती मिलति किल कण्ठे च सखिभिः
चलन्ती चापल्याच् चरति बहु वात्सल्यचरितम् ॥१॥

अनुवाद : कहीं (हिमालय पर्वत पर गङ्गा ऐसी बह रही है कि) कोई कन्या मानो पिता की गोद से सामने की ओर उतर रही हो । और कहीं इस प्रकार कलकल ध्वनि करती है कि मानो बालसुलभ बोल बोल रही हो । नदियों से खेलती हुई सखियों से निश्चित रूप से गले मिलती है । चंचलता से चलती हुई अनेक प्रकार के स्नेहपूर्ण आचरण करती है ॥१॥

क्वचित् काचित् कान्ता स्वजनविरहाद् दुःखिततरा
रुदन्ती हाहेति श्वशुरसदनं गच्छति यथा ।
ह्रदोद्रेकादद्रेः स्रवति ननु स्रोतो नयनयोः
सुतास्नेहाच्चापि प्रतिध्वनिपरैषा शिखरिणी ॥२॥

अनुवाद : कहीं गङ्गा ऐसी लगती है कि कोई कमनीय युवती अपने सगे सम्बन्धियों के विरह के कारण अत्यन्त दुःखी, हा हा करके माता पिता आदि के नाम पुकारती हुई ससुराल (समुद्र) को जा रही है । जलाशय में जलवृद्धि के कारण पर्वत से जलधारा ऐसी बहती है कि मानो पिता के नेत्रों से अश्रुधारा बह रही हो । बेटी के प्रेम के कारण गङ्गा के रुदन की गूंज माता शिखरिणी (पर्वतशृंखला) में सुनाई दे रही है ॥२॥

क्वचित् काचिन् माता व्रजति किमु वात्सल्यभरिता
पयःपूरं[१] प्रेत्याप्रतिहतगतिः प्रीतिप्रतिमा ।
समावर्तोद्भावान् परिवहति वेगाद् बलयती
ललन्ति गायन्ती खलु लहरिभिर्लालयति माम् ॥३॥

अनुवाद : गङ्गा कहीं ऐसी बहती है कि कोई प्रेम की मूर्ति माता स्नेह से पूर्ण होकर दूध की अधिकता से न रुकने वाली गति वाली हो जाती है ।

ठीक उसी तरह ऋषिकेश के पास गङ्गा वात्सल्य से भरी हुई जल की बाढ़ को लेकर किसी भी प्रकार न रुकते हुए प्रेम की प्रतिमा जैसे चली जा रही है । भँवररूपी भावों को धारण करके घूमती हुई गाती हुई वेग से बहती हुई अपनी लहरों से मुझको लाड लड़ा रही है ।।३।।

१. यहाँ पय:पूर का अर्थ दूध की तथा पानी की अधिकता दोनों हैं ।

महो नीलं नीलं सलिलमु सलीलं सुललितम्
सुधाधाराधारा मुनिजनपराराधनकला ।
यथाविद्युल्लेखा निमिषमनुवेगश्च मनसः
द्रवीभूतं ब्रह्म द्रवति च द्रुतं तद्वनमिति ।।४।।

अनुवाद : अत्यधिक अथवा पूजनीय नील वर्ण वाला क्रीड़ा करता हुआ गङ्गाजल अत्यन्त सुन्दर है । गङ्गा अमृत की धारा का आधार है। मुनिजनों के लिए परब्रह्म की उपासना की कुशलता है। अथवा मुनिजन के लिए श्रेष्ठ आराधना रूपी कला है । जैसे विद्युत् अर्थात् दामिनी चंचल है तथा जैसे मन का वेग प्रत्येक क्षण परिवर्तनशील है। उसी प्रकार क्षण क्षण में परिवर्तनशील तथा सबके द्वारा भजनीय गङ्गा भी द्रवीभूत ब्रह्म के रूप में तीव्र गति से बह रही है ।।४।।

प्रतिष्ठा वै विष्णोर्भवति पदयोस्तेन पदयो:
प्रतिष्ठा वै शम्भोर्भवति शिरसीवेति शिरसि ।
प्रतिष्ठाऽजस्य स्यात् स्वगतकलशे वेति कलशे
परिव्याप्ता शक्तिश्चितिरिति तु गङ्गा विजयते ।।५।।

अनुवाद : विष्णु जी की प्रतिष्ठा चरणों में है । इसी कारण गङ्गा जी भी विष्णु जी के चरणों में है । शिवजी की प्रतिष्ठा सिर अर्थात् सहस्रार में है इसीलिए शिवजी की जटाओं में गङ्गाजी हैं । ब्रह्माजी की प्रतिष्ठा जलपात्र में है । अत: गङ्गा उनके कमण्डलु में है । इस प्रकार गङ्गाजी सर्वव्यापिनी चैतन्य शक्ति है। इसलिए गङ्गाजी की सर्वत्र जय है ।।५।।

ॐ श्रीगणेशाय नमः

हे अनन्त नित्यमुक्त
हे स्वरूपसुन्दर
प्रियवर परावर हे स्वरूपसुन्दर
परमपुरुष अप्रमेय
हेतुहेतु हे
हे अनन्य अधिपते
नमन हे नमन हे
हे अनन्य अधिपते ।

अनुवाद : हे अन्तहीन निस्सीम परमात्मन् ! आप नित्य ही मुक्त हैं। बन्धन आपको छू भी नहीं गया। आप स्वरूपतः ही सुन्दर हैं। प्रेमास्पदों में श्रेष्ठ हैं अर्थात् आप सबसे अधिक प्यारे हैं। आप निर्गुण तथा सगुण दोनों रूपों में हैं। हे परमचैतन्य ! हृदयगुहा में रहने वाले आप प्रमारूप वृत्तिज्ञान के विषय नहीं हैं। आप कारण के भी कारण हैं अर्थात् प्रकृति के हेतु भी आप ही हैं। आप अन्य नहीं हैं अर्थात् आप स्वात्मस्वरूप ही हैं। हे सबके स्वामी ! आपको बार-बार नमन। हे आत्मरूप सबके स्वामी ! आपको बार-बार नमन।

ॐ श्रीगणेशाय नमः

जय जय सकलसर्गमय अव्यय ।
जय जय सर्वाश्रय जय जय ॥१॥

अनुवाद : हे अनश्वर ! आप सारी सृष्टि से युक्त हैं । आपकी जय हो, आपकी जय हो । आप सबके आधार एवं आश्रय हैं । आपकी जय हो, आपकी जय हो ॥१॥

जय जय जिज्ञास्यदेव ज्ञान एव ।
जय जय अमृतपदाभ्युपगम ।
जय जय परात्पर जय जय ॥२॥

अनुवाद : हे देव ! आप ही जिज्ञासा के विषय होने के योग्य हैं। आप ज्ञान ही हैं। आपकी जय हो। आपकी जय हो। सब शास्त्रों के द्वारा मान्य अमृतपद आप ही हैं। आपकी जय हो, आपकी जय हो। आप परम ब्रह्म हैं। आपकी जय हो, आपकी जय हो ॥२॥

जय जय जगतोऽधिगम निगमाधिगम
सक्रिय अक्रिय अन्वय ।
जय जय सर्वेश्वर जय जय ॥३॥

अनुवाद : आप जगत् के ईश्वर हैं अथवा जगत् की प्राप्ति आप से है क्योंकि आप उसके कारण हैं । वेदों के द्वारा प्राप्त करने योग्य भी आप ही हैं । आप सक्रिय, निष्क्रिय तथा जगत् में अनुगत हैं । आपकी जय हो, आपकी जय हो । आप सबके स्वामी हैं । आपकी जय हो, आपकी जय हो ॥३॥

जय जय शान्तिस्रोत ओतप्रोत।
जय जय गुहाहित गह्वर ।
जय जय सर्वान्तर जय जय ॥४॥

अनुवाद : आप शान्ति के उद्गम हैं तथा आप सर्वत्र व्याप्त हैं । आपकी जय हो, आपकी जय हो। आप सबकी बुद्धिरूपी गुहा में स्थित हैं । आप गूढतम

हैं अर्थात् आप छुपे हुए हैं । आपकी जय हो, आपकी जय हो । आप सबके भीतर हैं । आपकी जय हो, आपकी जय हो ।।४।।

ॐ श्रीगणेशाय नमः

।। हरिजी मोहि शरण रख लीजे ।।

हरिजी मोहि शरण रख लीजे
लेश द्वेष को रहे न दिल में दया प्रीति भरी दीजे ।
क्षमाशील निर्द्वन्द्व चाहे खूब खिजावे ।
मम मदनमोहन ! मद न मोह न होऊँ मैं निर्मम निरहंकारी ।
सन्तुष्ट सदा समचित समयुत निश्चल निश्चयधारी ।
मन मति अर्पित तव चरनन हो काम क्रोध सब छीजे ।
ऐसो कर्म बने नहीं मोते जग जाते जरि जावे ।
जरेना मन मेरोहू जगते परमहंस स्थिति कीजे ।

ॐ श्रीगणेशाय नमः

॥ ते जन मेरे प्राण पिरीते ॥

।। ते जन मेरे प्राण पिरीते ।। टेर ।।
मान अमान समान सुजन रिपु सरल सनेह सभी ते ।।१।।
शीत उष्ण सुख दुःख सहत सब संग बिगत रज रीते ।।२।।
निंदा स्तुति शिशु जनु नहीं जानत आत्मरूप परतीते ।।३।।
देह गेह की सुधि बिसरे से येन केन बिधि जीते ।।४।।
परमहंस गति सुमन विमल मति वचन सरस जस घीते ।।५।।

॥ अतिसय प्रिय ते भगत हमारे ॥

अतिसय प्रिय ते भगत हमारे,
निरीह निर्मल कुशल शान्त चित सब ते सदा किनारे ।
भोग जोग सब करम धरम जिन तृन समान तजि डारे ।
हरष न खेद न शोच न कांछा मगन रहत मन मारे ।
भला-बुरा कछु संग्रह नाही प्रेम विवश मतवारे ।
परमहंस वर पुण्यश्लोक नर तिहुँ लोक उजियारे ।
अतिसय प्रिय ते भगत हमारे ।

ॐ श्रीगणेशाय नमः

॥ अहे मन भावन रूप तिहारो ॥

अहे मन भावन रूप तिहारो
नील नीरज नील मणि सम नील नीरद कारो ।
चंचरीक कच चंचल लोचन,
चितवत लगत पियारो ।।१।।
अहे मन भावन रूप तिहारो ।

अरुणबिम्बफल अधर मंजु मुख,
दुइ दुइ दन्तनवारो ।
घुटहन चलत चकित चित हेरत
भावत भोरो भारो ।।२।।
अहे मन भावन रूप तिहारो ।

परमहंस मन बरबस धावत
रहत न नेक निवारो ।।३।।
अहे मन भावन रूप तिहारो ।

ॐ श्रीगणेशाय नमः

। श्री राधाजी का जन्मोत्सव ।

प्रगट भई राधिका
गंग की तरंग-सी
माधुरी उमंग-सी
प्रेम की सी व्यंजना
उदित भई राधिका ।।१।।

कामधेनु दुग्ध-सी
भावमयी मुग्ध-सी
रास की प्रकाशिका
उदित भई राधिका ।।२।।

विरहविलासिनि
वृंदावनवासिनि
कृष्णचन्द्र चन्द्रिका
उदित भई राधिका ।।३।।

कारुण्य लहराने
विराग बरसाने
कीरति की दुहिता
उदित भई राधिका ।।४।।